7

चार्वाक दर्शन

प्रस्तावना

इस पाठ में दर्शन के सामान्य ज्ञान के अनन्तर परम्परा भेद के परिणामस्वरूप कुछ विशेष ज्ञान की आलोचना की गई है। आदि में सर्वप्रसिद्ध चार्वाक दर्शन का आलोचन करते हैं। चार्वाक का उद्भव कैसे हुआ, इस विषय में हम जानेंगे। दसवीं कक्षा के लिए यह पाठ विरचित है। सरलता से विषय उपस्थापित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- चार्वाक दर्शन के उद्भव को जान पाने में;
- चार्वाक मत में प्रमा, प्रमेय, प्रमाण को जान पाने में;
- सम्प्रदाय के आचार्यों के परिचय को जान पाने में;
- चार्वाक दर्शन के ग्रन्थों का परिचय जान पाने में;
- चार्वाक दर्शन के प्रसिद्ध श्लोकों को जान पाने में;
- चार्वाकों के गुरूत्व का बोध कर पाने में।

7.1 भूमिका

चार्वाक दर्शन कुछ भिन्न दर्शन है। देवगुरू बृहस्पति ने ही लोगों को मोहित करने के लिए प्रिय वचनों द्वारा चार्वाक मत का उपदेश दिया, ऐसा सुना जाता है। चार्वाक दर्शन

का मूल ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। चार्वाक दर्शन धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य अथवा आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता है। चार्वाक भोगवाद को विशेषत: स्वीकार करते हैं। किन्तु इससे वे भोग में तत्पर और दुराचारी हैं, ऐसा निर्णय नहीं करना चाहिए। अहिंसा, शान्ति प्रियता, युद्ध विशेष, इत्यादि अनेक अंश उनके द्वारा भी प्रतिपादित हैं। इस दर्शन का सूत्रकार बृहस्पति नामक आचार्य है। इस दर्शन का प्रचारक चार्वाक नामक दैत्य था, अत: इस दर्शन की चार्वाक दर्शन के रूप में ख्याति है। चार्वाक दर्शन के अनुसार मृत्यु ही मोक्ष है। मृत्यु के पश्चात् कुछ भी नहीं है, ऐसा वे कहते हैं। वे परलोक और पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं। और वे पूछते हैं- ''भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:''। उनके लिए शरीर ही आत्मा है, शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। यह चार्वाक दर्शन का लोक में बहुत प्रचलित होने के कारण लोकायत दर्शन नाम प्राप्त है। प्रत्यक्ष उनका एकमात्र प्रमाण है।

''यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् नास्ति मृत्योरगोचर:।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:॥''

लोकगाथा के अनुसार चार्वाक ने कार्य किया। नीति-काम शास्त्र के अनुसार अर्थ और काम ही पुरूषार्थ माने गए तथा पारलौकिक अर्थ को छिपाकर चार्वाक मत अनुवर्तित हुए, ऐसा अनुभूत होता है। (स.द.संग्रह) पृथिवी-अप-तेज-वायु-रूपात्मक शरीर ही आत्मा है, शरीर से अतिरिक्त आत्मा नहीं है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। शरीरी के लिए अपेक्षित अर्थ और काम पुरूषार्थ हैं। वेद कल्पित है, अत: प्रमाण नहीं हो सकता, ऐसा चार्वाक मानते हैं।

क) पृथिवी-अप-तेज-वायु तत्व हैं।

ख) उनके कारण चैतन्य है।

ग) चैतन्यविशिष्ट शरीर ही पुरूष है।

घ) काम, अर्थ पुरूषार्थ है।

ङ) मृत्यु मोक्ष है।

इसीलिए-

''देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानात् मुक्तिरिष्यते।
अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलनिला:।
चतुर्भ्य: खलु भूतेश्यश्चैतन्यमुपजायते॥ (सं.द.सं.)

तत्वज्ञानियों के लिए सृष्टि का रहस्य अनुसन्धान का विषय होता है। सभी दार्शनिक विचारधाराओं में इस विषय का विश्लेषण किया गया है। यथा सभी मानव शरीर में जातिगत समानता विद्यमान होने पर भी आकृतिगत भेद होता है वैसे ही बुद्धि की विषमता से सृष्टि तत्व के एक सत् होने पर भी पृथक बुद्धि का विषय होने के कारण विविध रूपों में ज्ञात हो सकता है। अत: चार्वाक मत असम्यक् है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

दर्शन शास्त्र में प्रमेय तत्वों के सम्बन्ध में यह तथ्य घटित होता है। सृष्टि-स्रष्टा-प्रकृति ये तत्व विविध दर्शनों में विविध दृष्टि से विचार किये गए हैं। तत्व साक्षात्कार की प्रक्रिया में चिन्तक चिन्तन करके उपलब्ध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। एवम् विविध चिन्तकों के निष्कर्ष में पार्थक्य दिखता है। अत: दार्शनिकों का एक ही विषय में मतान्तर स्वाभाविक है। भारतीय दर्शन में एक सम्प्रदाय विशेष उपर्युक्त मत से सहमत नहीं है। चार्वाक का विचार है कि सृष्टि का जो स्थूल रूप दिखता है, वही सत्य है। दृश्यमान स्वरूप की अपेक्षा कोई भी अन्यत तत्व सूक्ष्म रूप से सृष्टि के मूल में है, यह विश्वास योग्य नहीं है। क्योंकि अदृष्ट सूक्ष्म तत्व की सत्ता में भी कोई प्रमाण है, ये भी नहीं कहा जा सकता। और बुद्धिभेद से ये स्थूलबुद्धि दार्शनिक अपनी स्थूल बुद्धि द्वारा जो भी जानने में सक्षम होते हैं, वही मूलतत्व स्वीकर करते हैं। यह संशय अथवा सन्देह वाद है।

यद्यपि महाभारत काल से पूर्व भी विद्यमान था तथापि वर्तमान काल में भी भ्रम को उत्पन्न करता है। वैदिक दर्शन इससे क्षतिग्रस्त हुआ। यद्यपि महाभारत काल में भगवद्गीता के माध्यम से वैदिक दर्शन का पुन: प्रतिष्ठापन विहित है, तथापि वेदविरोधी विचारों का मूलोच्छेदन नहीं हुआ। वैदिक दर्शन के ऊपर उनके वेदविरोधी आचार्यों के प्रहार सतत् होते रहे। अनुमान की अपेक्षा शब्द प्रमाण द्वारा ही सृष्टि के तत्वों का प्रामाण्य ग्रहण किया जाता है। सृष्टि के तत्वों का प्रामाण्य अनुमान की अपेक्षा शब्द प्रमाण द्वारा सरलता से ग्रहण होता है। वेद शब्द प्रमाण रूप हैं। वैदिक वाक्यों के द्वारा ही दर्शन में उक्त जीव-जगत्-ईश्वर-ब्रह्म आदि तत्वों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। फिर भी अवैदिक दर्शनों में वेदों का प्रामाण्य स्वीकृत नहीं है। अवैदिक दर्शनों में चार्वाक-जैन-बौद्ध प्रमुख हैं। इनमें भी जैन-बौद्ध की तत्वचिन्तन में सूक्ष्म दृष्टि है। चार्वाक तो पूर्ण रूप से स्थूल दृष्टि युक्त होते हैं। दर्शनशास्त्र के इतिहास में नास्तिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन का प्रथम स्थान है। इससे चार्वाक दर्शन की प्राचीनता भी सिद्ध होती है। इसका प्राचीनता के द्वारा यह भी स्पष्ट होता है की जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे उसकी संस्कृति में आचार-विचार का परिष्कार हुआ। सभ्यता के विकास के साथ सृष्टि विज्ञान आदि के दार्शनिक सिद्धान्त भी सूक्ष्म तत्व के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुए किन्तु सभ्यता के प्रारम्भ में दर्शनशास्त्र के स्थूल तत्व प्रचलित थे, ऐसा भी माना जा सकता है। यदि चार्वाक स्थूल विचार के पर्यन्त ही आत्मा के चिन्तन को श्रेयस्कर मानते हैं तो क्या दोष है?

वस्तुत: चार्वाक की यह हठधर्मिता तो उसके मत के पुरातन अस्तित्व को द्योतित करती है। चार्वाक की स्थूल दृष्टि की मान्यता का आधार क्या हो सकता है। दर्शन के तात्विक विश्लेषण से उसका निर्धारण करना चाहिए। प्रारम्भ में यह दर्शन लोकायत नाम से प्रसिद्ध था। लोकायतों का परपक्ष खण्डन के अतिरिक्त अन्य कोई सिद्धान्त नहीं था। वे लोकायत और वेदनिन्दक थे। अन्य में भी तात्कालिक विचारक इनसे खिन्न थे। जैन और बौद्ध द्वारा भी इनकी निन्दा विहित है। चार्वाक दर्शन, इस नामकरण में कोई भी सुदृढ़ प्रमाण नहीं है। आचार्य बृहस्पति के शिष्य चार्वाक थे, अत: ये भी चार्वाक कहे जाते हैं।

टिप्पणी

परलोक-पाप-पुण्य आदि के चर्वण के कारण भी ये चार्वाक हुए। इनके वाक् (वचन) चारू हैं, इसीलिए ये चार्वाक कहे जाते हैं। देवगुरू बृहस्पति ने ही इस मत का प्रवर्तन किया। बृहस्पति प्रवर्तित इस दर्शन में स्वभाववाद-यदृच्छावाद-नियतिवाद-कालवाद और भौतिकवाद अवधारणा के रूप में विकसित हैं। इनमें भी स्वभाव वाद चार्वाक के अतीव सन्निकट है। कारण है कि स्वभाववाद में कारण-कार्यभाव की आवश्यकता ही नहीं है। कालवाद में भाग्य का महत्व स्वीकृत है। नियतिवाद में आकस्मिकता के ग्रहण का विधान है। आकस्मिक घटनाओं के साथ यदृच्छावाद का ऐक्य चार्वाक द्वारा कहा गया है। चार्वाक सिद्धान्त का उल्लेख रामायण-महाभारत में भी उपलब्ध है। वाल्मीकि रामायण में लोकायतों का प्रसंग है। लोकायत मिथ्यावादी थे, ऐसा भी जानते हैं। महाभारत में देह की आत्मा है, इस सिद्धान्तवादी एवं लोकायत के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के प्रसंग में चार भूतों द्वारा चैतन्य की उत्पत्ति और प्रत्यक्ष मात्र का प्रामाण्य प्रतिपादित है। चार्वाक दर्शन का मूलग्रन्थ सूत्र शैली में उपनिबद्ध था। इसकी रचना आचार्य बृहस्पति द्वारा विहित है। इसके तथ्य का उल्लेख प्राप्त है, किन्तु वह सूत्र ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

डॉ. उमेश मिश्र द्वारा चार्वाक दर्शन के पन्द्रह सूत्र विविध भाष्यग्रन्थों और टीकाग्रन्थों द्वारा उद्धृत है। इसके अतिरिक्त 'भागुरि' कृत टीकाग्रन्थ का भी उल्लेख इतिहासकार करते हैं। भट्ट जयराशि कृत तत्वोपल्पवसिन्धु नामक अन्य ग्रन्थ के विषय में भी विज्ञात है। इस ग्रन्थ में चार्वाक सिद्धान्तों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। भारतीय दर्शन परम्परा में छः नास्तिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन अन्यतम दिखता है। इस दर्शन की महत् प्रसिद्धि थी। वह प्रायः सभी शास्त्रों में पूर्वपक्ष के रूप में अग्रगण्य होने के कारण ही जाना जाता है। वैदिक युग हुए भारत में प्रियवाक्य के कथन का निर्देश था। यद्यपि भारतवर्ष मूलतः अध्यात्मवाद के लिए प्रसिद्ध है तथापि जड़वादी चार्वाक ने मनोहर प्रियवाक्यों द्वार तर्कसभा में बहु ताडन प्राप्त किया।

7.2 सम्प्रदाय

विभिन्न दर्शन का कोई प्रवर्तक होता है। परन्तु चार्वाक दर्शन का कोई प्रवर्तक है, इस विषय में महान् विवाद है। तथापि किसी के द्वारा उक्त है कि देवगुरू बृहस्पति ही इस दर्शन के प्रचारक हैं। सर्वदर्शनसंग्रह में माधवाचार्य द्वारा कही गयी है जो बृहस्पति मत के अनुसार और नास्तिक शिरोमणि चार्वाक द्वारा भी है। यह बृहस्पति कौन है, उस विषय में स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं है। किसी के द्वारा कहा गया है कि चारू वाक् का अर्थ है मधुर वचन। अतः जो मधुर वचनों द्वारा सभी का मन हरते है, वे चार्वाक हैं। चर्व धातु का अर्थ चर्वण (चबाना) है, यह स्वीकार करके कुछ कहते हैं जो भोजन के तत्व का प्रचार करते हैं, वे चार्वाक हैं।

7.3 चार्वाक के विविध विशेषण

चार्वाक वैतण्डिक कहे जाते हैं। चार्वाक वितण्ड-निपुण हैं। वैतण्डिक का लक्ष्य केवल

टिप्पणी

परमत खण्डन अर्थात् अन्य के मत का खण्डन है। वितण्डयते व्याहन्यते परपक्षोऽनया, इस व्युत्पत्ति से वितण्डा शब्द निष्पन्न है। अत: जो केवल परपक्ष के खण्डन में प्रवृत्त होते हैं, वे वैतण्डिक चार्वाक हैं।

चार्वाक का अपर नाम लोकायतिक भी है। लोक में आयत अर्थात् विस्तृत जो है वह लोकायत है। लोकायत को जो स्वीकार करते हैं, वे लोकायतिक हैं। इन्द्रिय सुख ही पुरूषार्थ है, ऐसी उनकी वाणी जगत में सभी लोगों को आकर्षित करती है। अनेक लोगों के चित्त को आकर्षित करती है, इस कारण से चार्वाक लोकायतिक हैं। मधवाचार्य ने चार्वाक मत को लोकायत मत कहा। वह जैसे उसके चार्वाक मत का अपर अन्वर्थ लोकायत है। चार्वाक नास्तिक हैं। जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक हैं। जो उसी प्रकार वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक हैं। चार्वाक वेद की निन्दा करते हैं, अत: वह नास्तिक है, ऐसा प्रसिद्ध है।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. चार्वाक का अपर नामधेय क्या है?
2. चार्वाक वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं अथवा नहीं?
3. चार्वाक किन दो पुरूषार्थों को मानते हैं?
4. चार्वाक के गुरू कौन?
5. चार्वाक दर्शन में पुरूष क्या है?
6. चार्वाक के मत में सुख का स्वरूप क्या है?
7. चार्वाक दर्शन में कितने तत्व हैं?
8. चार्वाक मत में आत्मा का स्वरूप क्या है?
9. वैतण्डिक कौन है?
10. सर्वदर्शन संग्रह के लेखक कौन हैं?

7.4 चार्वाक मत में प्रमा और प्रमाण

चार्वाक दर्शन में प्रमेय तत्वों का स्थूल स्वरूप ही वास्तविक रूप में स्वीकृत है। अत: स्थूल पदार्थों के ज्ञान के लिए उसमें प्रत्यक्ष ही उपयुक्त माना गया। जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, वे काल्पनिक ही होती हैं, ऐसा न्याय द्वारा प्रत्यक्ष के ही प्रामाण्य को चार्वाक के मत में कहा गया है। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, इन पाँचों के विषयों का ज्ञान होता है, अत: पाँच ही सत्तात्मक पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त

कोई भी विषय कल्पनामात्र प्रतीत होता है। और उसकी प्रामाणिकता नहीं होती है। सभी भारतीय दर्शनों में इन्द्रियातीत और परोक्ष पदार्थों के ज्ञान के लिए अनुमान का प्रामाण्य स्वीकृत है किन्तु चार्वाक मत में अनुमान का प्रामाण्य नहीं है। क्योंकि अनुमान से उत्पन्न ज्ञान केवल सम्भावनात्मक ही होता है, निश्चयात्मक नहीं। सम्भावना सर्वदा सत्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। चार्वाक द्वारा कार्यकारण भाव भी स्वीकृत नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष सुख-दु:ख का कारण अप्रत्यक्षरूप में कल्पित पाप-पुण्य आदि नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई बुद्धिजीवी और परिश्रमी मनुष्य केवल पूर्व में किए पुण्य के बल से ही सुखी होता है। अथवा कोई बुद्धिहीन और आलसी पूर्व में किए पुण्य के अभाव में अथवा पूर्वकृत पाप के द्वारा ही दु:खी होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मानव बुद्धि में न्यून-अधिकता के कारण कार्य प्रवृत्त होकर स्वभावत: कभी सुखी कभी दु:खी होता है, ऐसा चार्वाक कहते हैं।

पाप-पुण्य के लिए सत्-असत् कर्मों की व्याप्ति नैयायिक भी स्वीकार करते हैं किंतु उनकी यह व्याप्ति सिद्ध नहीं है। क्योंकि किसी भी कार्य की उत्पत्ति में कोई भी कारण नहीं होता है। स्वभाव से ही कार्य की निष्पत्ति होती है। अन्यथा काँटों में दिखने वाली तीक्ष्णता का क्या हेतु है, इस तत्वान्वेषण में कोई हेतु अवश्य उपलब्ध होता। और वे हेतु प्राप्त नहीं ही होता है, अत: कार्यकारणभाव की सिद्धि में भी हेतु का अभाव दिखता है। सृष्टि-प्रलय में भी कार्यकारणभाव नहीं है। चार भूतों के आनुपातिक सम्मिश्रण के कारण ही जगत् स्वयं ही अस्तित्व को प्राप्त करता है। और उसके आनुपातिक स्थिति में विलय से प्रलय होता है। किन्तु जगत् का आविर्भाव-तिरोभाव एवं प्राणी-पदार्थों का संयोग और वियोग स्वाभाविक ही हैं। कार्य-कारण में साहचर्य की सिद्धि के अभाव से अनुमान का प्रमाण नहीं है, कार्यकारण-भाव भी असिद्ध है। चार्वाक दर्शन में शब्द भी प्रमाण द्वारा स्वीकृत नहीं है। कुछ लोग सर्वथा सत्य ही बोलते हैं, इस प्रकार उनकी सत्यनिष्ठा पर निर्भर योग्यता नहीं है। शब्द भी पुन: अनुमान तुल्य है। वेदों का भी प्रामाण्य नहीं है, क्योंकि वेदों में भी अनेक वेद विरोधी वचन प्राप्त होते हैं। अनेक निरर्थक शब्द भी वेदों में प्रयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त वेदों में इस प्रकार के पदार्थों का वर्णन भी प्राप्त होता है, जिनका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। इस प्रकार परस्पर विरोधी, निरर्थक और काल्पनिक विषयों का निरूपण जिनमें विहित हो, उन वेद का कैसे प्रामाण्य हो। वैदिक कर्मकाण्डों द्वारा यह प्रतीत होता है कि कुछ धूर्तों द्वारा ही लोक प्रवचन अथवा स्वार्थ साधन के लिए वेदों की रचना विहित है। इसीलिए शास्त्र में-

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड-धूर्त-निशाचरा:।
जर्फरी-तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वच: स्मृतम्॥

7.5 प्रत्यक्षैक प्रमाणवाद

प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्। प्रमाण प्रमा अर्थात् ज्ञान का करण है। प्रमा का अर्थ यथार्थ

ज्ञान है। चार्वाक के मत में संशय, विपर्यय शून्य ज्ञान ही प्रमा है। चार्वाक के मत में प्रमा का करण प्रत्यक्ष ही है, अन्य नहीं। चार्वाक के मत में एक ही प्रमाण 'प्रत्यक्ष प्रमाण' हैं मधवाचार्य ने कहा कि – ''प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानदेरनन्नकारेण प्रामाण्याभावात्। और कुछ प्रत्यक्ष के सभी प्रमाणों में ज्येष्ठ होने के कारण प्रत्यक्ष ही प्रमाण होता है। अनुमान आदि का प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भाव प्रत्यक्ष के अधीन होने से होता है।

चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमान आदि प्रमाणों का ग्रहण नहीं होता है। मधवाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में कहा है कि प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेः अनन्नीकारेण प्रामाण्याभावात् इति। जिसकी उपलब्धि नहीं होती है, वह नहीं है। विपरीत द्वारा जिसकी उपलब्धि होती है, वह है। इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष में प्राप्त वस्तुओं का ही अस्तित्व होता है। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न सम्यक् अपरोक्ष अनुभव ही प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष अपर की अपेक्षा नहीं करता, अतः अपरोक्ष है। अतः संशय शून्य और विपर्यशून्य प्रत्यक्ष ही प्रमा है। और इस प्रमा का करण ही प्रमाण है।

चार्वाक कहते हैं कि प्रत्यक्ष के श्रेष्ठत्व के विषय में कोई भी वितर्क नहीं है। यह तो सत्य ही है कि सभी भारतीय दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष प्रमाण का श्रेष्ठत्व स्वीकार किया है। अवितर्कित सर्वजन्य मान्य प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। दृश्यमान वस्तु के विषय में प्रश्न अथवा शंका कैसे हो?

जो अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण द्वारा स्वीकार करते हैं, वे भी प्रत्यक्ष का ही जय गान करते हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष ही अनुमान आदि का उपजीव्य है। अनुमान, उपमान और शब्द प्रत्यक्ष के अधीन हैं। क्योंकि वह्नि-धूम के साहचर्य के प्रत्यक्ष द्वारा ही वर्तमान धूम को देखकर वह्नि का अनुमान किया जाता है। अत: अनुमान भी प्रत्यक्ष के अधीन है। क्योंकि साहचर्य का प्रत्यदि न हो तो अनुमान असम्भव होगा। उसी प्रकार गवयत्व विशिष्ट पशु में गोसादृश्य को देखकर गवय शब्द के वाचवत्य का निर्णय ही उपमिति है। उपमिति में अज्ञात पदार्थ पर ज्ञात पदार्थ के सादृश्य में प्रत्यक्ष आवश्यक है। उस सादृश्य प्रत्यक्ष के कारण ही अज्ञात पदार्थ के साथ ज्ञात पदार्थ का निश्चयात्मक अनुभव होता है। अत: प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है। और शब्द प्रमाण भी प्रत्यक्ष के अधीन है। आप्त व्यक्ति का वाक्य ही शब्द प्रमाण है। जो यथार्थवक्ता है वह ही आप्त है। अत: चार्वाक का मत सत्य है।

7.6 चार्वाक दर्शन की तत्व मीमांसा

चार्वाक दर्शन के अनुसार तत्वों का स्थूल दृष्टि भूत स्वरूप ही यथार्थ है। उन स्थूल तत्वों के स्वरूप-लक्षण-प्रयोजन आदि विचार चार्वाक दर्शन में विशद रूप से विहित हैं। चार्वाक दर्शन के अनुसार पृथ्वी-जल-वायु और तेज, ये चार ही प्रमेय पदार्थ होते

टिप्पणी

हैं। इनके द्वारा ही चार स्थूल ब्रह्माण्ड की रचना विहित है। परवर्ती चार्वाकों के द्वारा आकाश, मन, प्राण आदि का भी प्रमेय पदार्थों में ही परिगणन किया गया। इस प्रकार अनुमान किया जाता है कि अतिस्थूलवादी चार्वाक अतिप्राकृत थे। इन्हीं मूल तत्वों द्वारा इस दृश्यमान जगत के शरीर की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति के क्रम-सन्दर्भ में चार्वाक मौन हैं। सृष्टि में किसी भी अदृष्ट की कहीं भी कारणता नहीं है।

अतएव यह जगत् चार भूतों के आनुपातिक-समन्वय का आकस्मिक परिणाम है। जीवन के सम्बन्ध में भी चार्वाकों का यही सिद्धान्त है कि शरीर के अभाव में चैतन्य नहीं रहता है। शरीर की सत्ता में ही चैतन्य की सत्ता सिद्ध होती है। इस प्रकार शरीर ही चैतन्य रूप आत्मा है, यह स्पष्ट होता है। यथा पदार्थों के उचित सम्मिश्रण के परिणाम स्वरूप किण्व आदि द्रव्य से मदशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार पृथिवी आदि चार भूतों के संयोग से चैतन्य स्वत: ही उत्पन्न होता है। चार्वाक दर्शन के विकासक्रम में स्थूल से सूक्ष्म के प्रति तत्वचिन्तन की प्रवृत्ति हुई। अत: कुछ परवर्ती चार्वाकों के द्वारा इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं, इस सिद्धान्त को उपस्थापित करने के लिए देहात्मवाद का खण्डन किया। कुछ चार्वाकों के द्वारा प्रामाण्यवाद की भी स्थापना की गई। कुछ चार्वाक भी मन ही आत्मा है, ऐसा स्वीकार करते हैं। तथापि चार्वाक मत के अनुयायियों की स्थूल दृष्टि अन्तर्मुखी नहीं होती है।

7.7 सृष्टि प्रक्रिया

चार्वाक जड़ पदार्थ की सत्यता को स्वीकार करते हैं। इनके मत में इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा केवल पृथिवी, आप, तेज, वायु, इन चारों की ही उपलब्धि होती है। अखिल जगत् के चारों के मिश्रण द्वारा ही सृष्टि होती है। आकाश के अनुमान द्वारा गम्य होने से स्वीकार्य नहीं है। जीव इन भूतों के संमिश्रण होने पर उत्पन्न हुआ। चार्वाक परमाणु को नहीं स्वीकार करते हैं। परमाणु के प्रत्यक्ष द्वारा अदृश्य होने के कारण। स्थूल, अवयव परमाणु से सृष्टि होती है। अकस्मात् ही होता है, जीव किसी कार्य की अपेक्षा नहीं है। चारों भूतों के समन्वय से चैतन्य उत्पन्न होता है। चैतन्य रूप आगन्तुक धर्म जड़ देह का आर्विभाव काल में आता है, विनाशकाल में जाता है। जगत् के कारण रूप में ईश्वर के अंगीकार की आवश्यकता नहीं है। यथा किण्व आदि द्वारा मदशक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार चैतन्य उत्पन्न होता है। शरीर के नाश होने पर चैतन्य का विनाश होता है।

7.8 देहात्मवाद

चार्वाक के मत में देह ही आत्मा है। प्रत्यक्ष वेद्य होने के कारण देह के अतिरिक्त

टिप्पणी

कोई भी आत्मा नहीं है। चैतन्य विशिष्ट देह आत्मा है। अतः देह के विनाश होने पर आत्मा का विनाश होता है। जहाँ चैतन्य का प्रत्यक्ष होता है, वहाँ स्थूल शरीर दिखता है। स्थूलोहं (मैं मोटा हूँ), मम शरीरम् (मेरा शरीर) इत्यादि व्यवहार राहोः शिरः (राहू का सिर) इत्यादि के समान औपचारिक है।

7.9 मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष के साधन

दर्शन शास्त्र का मोक्षरूप फल में ही तात्पर्य है। चार्वाक दर्शन में भी मोक्ष का स्वरूप कहा गया है। कण्टक आदि से उत्पन्न दुःख ही नरक है। लोक सिद्ध राजा परमेश्वर है। देह का नष्ट होना मोक्ष है। स्त्रियों के आलिंगन आदि से उत्पन्न सुख ही पुरूषार्थ है। आत्मा नहीं है। परलोक नहीं है। अपवर्ग नहीं है। अग्निहोत्र आदि यज्ञ का फल नहीं है। और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में अर्थ और काम पुरूषार्थ है। शरीर के उच्छेद (नष्ट) होने के पश्चात् उसका रक्षण ही मोक्ष साधन है।

7.10 चार्वाक सम्प्रदाय में प्रसिद्ध श्लोक

यावज्जीवेत् सुखं जावेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

अन्वय -

यावत् जीवं सुखं जीवेत्। मृत्योः अगोचरः नास्ति (किमपि)। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनः कुतः आगमनम्।

साधारण अर्थ-

चार्वाक दर्शन में यह श्लोक प्रसिद्ध है। जिस काल पर्यन्त तक जीव की आयु हो उस काल पर्यन्त तक सुख से जीवन यापन करें। क्योंकि देह (शरीर) का विनाश ही मोक्ष है। वहाँ मृत्यु के बाद कुछ भी प्रत्यक्ष गोचर नहीं है। मृत्यु ही जीव की अन्तिम सीमा है। अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भस्मीभूत शरीर पुनः जन्म नहीं होता है। अतः शरीर के सुख के लिए ऋण लेकर घृत का पान करें। परलोक कुछ भी नहीं है। शरीर के नाश होने पर ही सभी समाप्त हो जाता है।

सन्धिविच्छेद-

मृत्योरगोचरः - मृत्योः - अगोचरः

पुनरागमनम् - पुनः - आगमनम्

जीवेन्नास्ति - जीवेत् - नास्ति

यावज्जीवं - यावत् - जीवम्

अन्ननालिन्ननाज्जन्यसुखमेन पुमर्थता।

कण्टकादिव्यथाजन्यं दु:खं निरय उच्यते।।

अन्वय:-

अन्ननालिन्ननात् जन्यसुखम् एव पुमर्थता भवति।
कण्टकादिव्यभाजन्यं दु:ख निरय उच्यते।।

साधारण अर्थ:-

चार्वाक के मत में स्त्री आदि के स्पर्श से उत्पन्न सुख ही पुरूषार्थ होता है। वह शरीर भोग का नाम ही सुख है। पुरूषों के द्वारा जगत् में वही प्रार्थना की जाती है। सभी की सुख वासना होती है। कण्टक आदि व्यथा से उत्पन्न दु:ख नरक है। आदि पद से जरा-व्याधि का ग्रहण किया गया है। इहलोक को छोड़कर अन्यत्र सुख नहीं है। अतएव यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, यह प्रवाद भी चार्वाक सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध है। और कुछ शरीर के क्लेश ही कष्ट है। अत: सभी प्राणी शरीर के क्लेशों के नाश के लिए उन-उन वस्तुओं को स्वीकार करते हैं।

लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशो ''नापर: स्मृत:।
देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते।।

अन्वय :-

लोकसिद्धो राजा (एव) परेशो भवेत्। न अपर: परेश: स्मृत:। देहस्य नाशो मुक्ति:। न तु ज्ञानात् मुक्ति: इष्यते।

साधारण अर्थ:-

चार्वाक ईश्वर को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है। क्योंकि वे परलोक को स्वीकार नहीं करते हैं। और कोई ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होता है। और भी, राजा ही जगत् में सभी प्रजा का पालन तथा रक्षण करता है। अतएव राजा ही इस जगत् का कर्ता, अलौकिक ईश्वर नहीं। और देह का विनाश ही मुक्ति है। जीव की अन्तिम गति है। उससे अन्य कुछ भी जीव को प्राप्तव्य नहीं है। और भी, जैसे वेदान्ती, सांख्य आदि के द्वारा ज्ञान से मोक्ष स्वीकार किया जाता है, वैसे चार्वाक स्वीकार नहीं करते हैं। उनके ज्ञान से मुक्ति नहीं होती।

अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिला:।
चतुर्भ्य: खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते।।

टिप्पणी

अन्वय :-

अत्र चत्वारि भूतानि भवन्ति भूमिवार्यनलानिलाः च।
चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यः चैतन्यम् उपजायते॥

साधारण अर्थः-

चार्वाक चार भूत स्वीकार करते हैं। इन भूतों का संम्मिश्रण होने सृष्टि प्रक्रिया होती है। आकाश के अदृश्य होने के कारण स्वीकार नहीं है। और भी, जैसे किण्व आदि से मदशक्ति के समान यहाँ भी सृष्टि प्रक्रिया में जड़ भूतों द्वारा चैतन्य उत्पन्न होता है। जीव की उत्पत्ति इसी प्रकार से होती है। यहाँ ईश्वर कारण नहीं होता। जड़ द्वारा ही जीव की सृष्टि होती है। न स्वर्ग नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥

अन्वयः-

न स्वर्गः अस्ति। न अपवर्गः अस्ति। न वा आत्मा पारलौकिकः अस्ति। वर्णाश्रमादीनां क्रिया नैव फलदायिका अस्ति।

साधारण अर्थः-

स्वर्ग नामक कोई भी स्थान नहीं है। और ना ही अपवर्ग रूप फल है। आत्मा शरीर रूप है, पारलौकिक नहीं। शरीर से भिन्न कोई भी आत्मा नहीं होता है। और भी, वेद विहित कर्म के करण से जो स्वर्ग आदि रूप फल प्राप्त होता है, वह भी मिथ्या है। लोकयातिक वेद के मिथ्यात्व को स्वीकार करते हैं। अतः वेदविहित कर्म भी मिथ्या है। अतः मिथ्यारूप कर्म से कोई फल प्राप्त नहीं होता है। देहभोग आदि रूप सुखफल ही अन्तिम फल के रूप में कल्पित है।

7.11 चार्वाक ग्रन्थ समूहों का परिचय

चार्वाक दर्शन यद्यपि जगत् में बहुत प्रसिद्ध है तथापि उनका प्रमाणभूत ग्रन्थ रूप में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। मधवाचार्य के सर्वदर्शनसंग्रह में उनके दर्शन की कुछ रूपरेखा है। परन्तु विभिन्न दर्शनग्रन्थों में पूर्वपक्ष के रूप में चार्वाक के वचन प्राप्त होते हैं। यथा न्यायकुसुमाञ्जलि ग्रन्थ में, न्यायमञ्जरी ग्रन्थ में, ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थ में, षड्दर्शनसमुच्चय ग्रन्थ में पूर्वपक्ष के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के द्वारा ही चार्वाक दर्शन का मत स्पष्ट ज्ञात होता है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. चार्वाक मत में कितने प्रमाण हैं?

टिप्पणी

2. चार्वाक के मत में प्रमा क्या है?
3. चार्वाक के मत में अपवर्ग है अथवा नहीं?
4. चार्वाक के मत में परलोक है अथवा नहीं?
5. चार्वाक के मत में दु:ख का स्वरूप क्या है?
6. देहात्मवाद क्या है ?

पाठसार

चार्वाक नास्तिक होते हैं। वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में स्थूल पदार्थ ही संसार में होते हैं। चार्वाकों का एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनुमान आदि का तो प्रत्यक्ष में ही अन्तर्भाव होता है। चार्वाक कहते हैं शरीर ही मोक्ष है। शरीर का नाश होना मोक्ष है। शरीर के अतिरिक्त आत्मा नहीं है। चार्वाक देहात्मवाद को स्वीकार करते हैं। उनके मत में चार ही भूत होते हैं। इन्हीं भूतों के संमिश्रण में सृष्टिक्रिया होती है। इनके मत में प्रत्यक्ष सिद्ध राजा ही ईश्वर है। राजा को छोड़कर पृथक् ईश्वर नहीं है। यदि होता तो दिखता। परन्तु ईश्वर किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। अत: राजा ही ईश्वर है। चार्वाक पुनर्जन्मवाद को नहीं ही स्वीकार करते हैं। क्योंकि उनके मत में मृत्यु के पश्चात् कुछ भी नहीं है। भस्मीभूत शरीर का पुन: आगमन नहीं होता हे। और भी, अन्नादि आदि से जन्य सुख ही परम सुख है। अत: जब तक जीयें, सुखपूर्वक जीयें, ऐसा इनका निर्णय है। चार्वाक भोगवाद को स्वीकार करते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. चार्वाकों के देहात्मवाद को विशदीकृत कीजिए।
2. चार्वाकों के सम्प्रदाय के विषय में प्रबन्ध लिखिए।
3. चार्वाकों के मोक्ष का व्याख्यान कीजिए।
4. चार्वाक के मत में सृष्टि प्रक्रिया को लिखिए।
5. चार्वाक कितने प्रमाण स्वीकार करता है, वह लिखकर प्रत्यक्षवाद को लिखिए।
6. चार्वाकों के नास्तिकत्व की आलोचना कीजिए।
7. चार्वाकों की तत्वमीमांसा को लिखिए।
8. 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्', इस श्लोक के तात्पर्य द्वारा व्याख्यान कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-7.1

1. चार्वाकों का अपर नाम लोकायतिक है।
2. नहीं, चार्वाक वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं।
3. काम और अर्थ ही चार्वाकों के पुरूषार्थ हैं।
4. चार्वाकों के गुरू आचार्य बृहस्पति है।
5. चैतन्य विशिष्ट शरीर ही पुरूष हैं।
6. अन्न आदि से उत्पन्न सुख ही परम सुख है, ऐसा चार्वाक का मत है।
7. चार्वाक दर्शन में पृथिवी, जल, तेज, वायु ये चार तत्व हैं।
8. चार्वाक मत में चैतन्य विशिष्ट शरीर ही आत्मा है।
9. चार्वाकों का ही अपर नाम वैतण्डिक है।
10. सर्वदर्शनग्रन्थ के लेखक माधवाचार्य हैं।

उत्तर-7.2

1. चार्वाक मत में प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है।
2. प्रत्यक्ष जन्य ज्ञान ही प्रमा हैं अन्य ज्ञान तो अप्रमा है।
3. 'नहीं', चार्वाक मत में अपवर्ग नहीं है।
4. 'नहीं', चार्वाक मत में परलोक नहीं है।
5. कण्ट आदि से जन्य (उत्पन्न) कष्ट ही परम दु:ख है।
6. चार्वाक चैतन्य विशिष्ट शरीर ही आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं। शरीर को छोड़कर कोई भी आत्मा नहीं है। यही वाद देहात्मवाद है।

॥ सप्त पाठ समाप्त॥